6

ब्रम्हदत्त जिन दिनों वाराणसी नगर पर राज करता था, उस समय एक बार बोधिसत्व ने हरिण के रूप में जन्म लिया और वह भी सुनहरे हरिण के रूप में। उस हरिण की आँखें नीलमों की तरह चमकती रहती थीं। उसके खुर चाँदी के थे। उसका मुँह बिलकुल लाख की तरह लाल था। यह सुनहरा हरिण एक बरगद के पेड़ के नीचे रहता था और पाँच सौ हरिणों के झुण्ड का अगुवा था।

वहीं नज़दीक ही एक पीपल का पेड़ भी था जिस के नीचे और एक हरिण रहता था। वह भी बरगद वाले हरिण की तरह ही बहुत सुन्दर और सुनहरा था। वह भी पाँच सौ हरिणों के एक झुण्ड का अगुआ था। उसे पीपल वाला हरिण कह कर पुकारते थे। उन दिनों काशीराज ब्रह्मदत्त को मृगया का व्यसन लगा रहता था। वह रोज अपने परिजनों के साथ जङ्गल जाया करता था। इस से राज का काम काज सब चौपट हो जाता था और लोगों को बहुत कष्ट होता था। आखिर मुख्य मुख्य दरबारियों और मन्त्रियों ने एक जगह जमा होकर सलाह-मशवरा किया और तय किया-"इस राजा के मृगया व्यसन के कारण हमारा काम-धाम सब चौपट हो रहा है। इसलिए हमें चाहिए कि बहुत से हरिणों को लाकर राज-वन में छोड़ दें जिस से राजा को मृगयार्थ जङ्गल जाने की जरूरत न पड़े।" यह उपाय सब को पसन्द आ गया।

अब बहुत से लोग जङ्गल जाने, हरिणों को पकड़ लाने और राज-वन में छोड़ने लगे। ऐसे लोगों को इनाम भी दिया जाने लगा। हरिण हजारों की तादाद में पकड़े गए, जिन में पीपल और बरगद वाले हरिण भी थे।

कुछ दिन तक राज-वन में शिकार खेल कर राजा का मन ऊब गया। जहाँ देखो वहीं हरिण थे। उनको मारना बच्चे का काम था। इस शिकार में कोई मजा न था। इसलिए अब राजा का रसोइया ही आकर, रोज एक एक हरिण को मार कर ले जाने लगा।

हरिण सभी रसोइये को पहचान गए थे और देखते ही भागने लगते थे। इस से रसोइए को तीरों की बौछार करनी पड़ती थी जिस से रोज एक से ज्यादा ही हरिण मरते या घायल होते थे। हरिणों की जान नाहक जा रही थी। यह सब देख कर बरगद वाले हरिण ने (यानी बोधिसत्व ने) एक दिन पील वाले हरिण को बुला कर कहा-"मित्र ! रसोइए के यहाँ आने से नाहक ही भगदड़ मच जाती है और कई हरिणों की जान जाती है। रोज एक हरिण को किसी न किसी तरह मरना ही है। फिर सब की बारी क्यों न बना ली जाय जिस से हर रोज एक हरिण पाक-शाला को जाकर वध्य-शिला पर अपना सिर रख दे। इस से वृथा प्राण-हानि न होगी और रोज़ एक ही हरिण मरेगा।"

इस तरह जब राज-वन हरिणों से भर गया तो कुछ सम्मान्य व्यक्तियों ने राजा के पास जाकर विनती की - "हुजूर! अब आपको मृग मांस की किसी दिन कमी न होगी।"

उनकी बातें सुन कर राजा को बहुत खुशी हुई। राज-वन जाकर देखा तो वहाँ बेशुमार हरिण स्वच्छन्द विचर रहे थे। खास कर बरगद और पीपल वाले दोनों सुनहरे हरिणों को देख कर उसे बहुत मोद हुआ और उसने आज्ञा दी-"इन दोनों हरिणों को कोई न मारे !"

उसकी बात पीपल वाले हरिण ने भी मान ली। दोनों हरिणों ने अन्य सभी हरिणों को यह निश्चय जता दिया। हरिण सभी उसी निश्चय के अनुसार चलने लगे जिस से बहुत से हरिणों की जान बच गई।

हाँ, तो एक दिन पीपल वाले हरिण के झुण्ड में एक गाभिन हरिणी की बारी आई। तब उसने अपने झुण्ड के अगुवा के पास जाकर कहा-"मैं गाभिन हूँ। कुछ ही दिनों में बच्चे देने वाली हूँ। मैं मरने से नहीं डरती। लेकिन अभी मरने से बेकसूर बच्चों की जान चली जायगी। इसलिए अमी मेरी बारी हटा कर किसी दूसरे को भेजिए।"

तब पीपल वाला हरिण निर्दय स्वर में बोला-"नहीं ! ऐसा तो नहीं हो सकता। तुम्हारी बारी है तो तुम्ही को जाना होगा।"

तब हरिणी ने बरगद वाले के (माने बोधिसत्व के) पास जाकर अपना दुखड़ा रोया। बरगद वाले हरिण ने कहा-"तुम डरो नहीं ! में तुम्हारे बदले जान देने को तैयार हूँ। उसने उसे तसल्ली देकर भेज दिया और पाक-शाला में जाकर वध्य-शिला पर अपना शीस रख दिया।

जब रसोइए ने आकर उसे देखा तो आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उसने सोचा-" यह क्या? आज यह सुनहरा हरिण कैसे आ गया। राजा ने आज्ञा दी थी कि इन्हें कोई न मारे !" यह सोच कर वह उलटे पाँव लौट गया और जाकर राजा को सारा हाल सुना दिया। तुरन्त राजा अपने दरबारियों के साथ वहाँ आया। "हे हरिण राज! हम ने तो आज्ञा दी थी कि तुम्हें न मारा जाय। फिर तुम क्यों नाहक खुद ही जान देने आए हो?" उसने पूछा।

"राजन् ! इस में आश्चर्य की कोई बात नहीं!" यह कह कर बरगद वाले हरिण ने गाभिन हरिणी की पूरी राम कहानी कह सुनाई।

सारी कहानी सुनने के बाद राजा ने उसकी बड़ी प्रशंसा की और बोला- "हे हरिण राज! मैंने तुम्हारी जैसी उदारता और दया-शीलता मनुष्यों में भी कहीं नहीं देखी। तुम्हें देख कर मुझे बड़ी प्रसन्नता होती है। जाओ, हम तुम्हें और उस गामिन हरिणी को भी छोड़ देते हैं।"

"किन्तु राजन् ! सिर्फ हम दोनों की जान बचाने से क्या होता है ! अन्य हरिणों का क्या हाल होगा ?" बरगद वाले हरिण ने पूछा। "अच्छा, आज से हम उन्हें भी छोड़ देते हैं!" राजा ने उदार भाव से कहा।

"फिर भी कर्तव्य पूरा नहीं होता। जङ्गल में सिर्फ हरिण ही नहीं रहते ! वहाँ बहुत से और भी जीव-जन्तु रहते हैं। हरिणों की तरह उनको भी अपनी जान प्यारी होती है। उनका क्या हाल होगा ?" बरगद वाला हरिण बोला। "अच्छा! हम उन सभी को अभय-दान देते हैं !" राजा ने कहा।

"किन्तु देव ! जङ्गल में पेड़ों पर पक्षी बसते हैं और सर-सरिताओं में जलचर बसते हैं। उनको जान भी उतनी ही महङ्गी है जितनी हम सब की। क्या आप उनकी रक्षा का वचन नहीं देंगे ?" बरगद वाले हरिण ने (यानी बोधिसत्व ने) पूछा।

"तुम्हारा कहना ठीक है। हम आज से सब तरह के जीवधारियों को अभय देते है। अब प्राणि-मात्र निश्शङ्क होकर जिएँ।" राजा ने करुणा से द्रवित होकर कहा।

इस तरह उस राजा के हृदय में करुणा की ज्योत जगा कर, सभी जीवों की ओर से अभय का वचन लेकर, वह बरगद वाला हरिण वन को लौट गया। वाराणसी राज्य में सब प्रकार की हिंसा बन्द हो गई और सभी हरिणों को छुटकारा मिल गया।

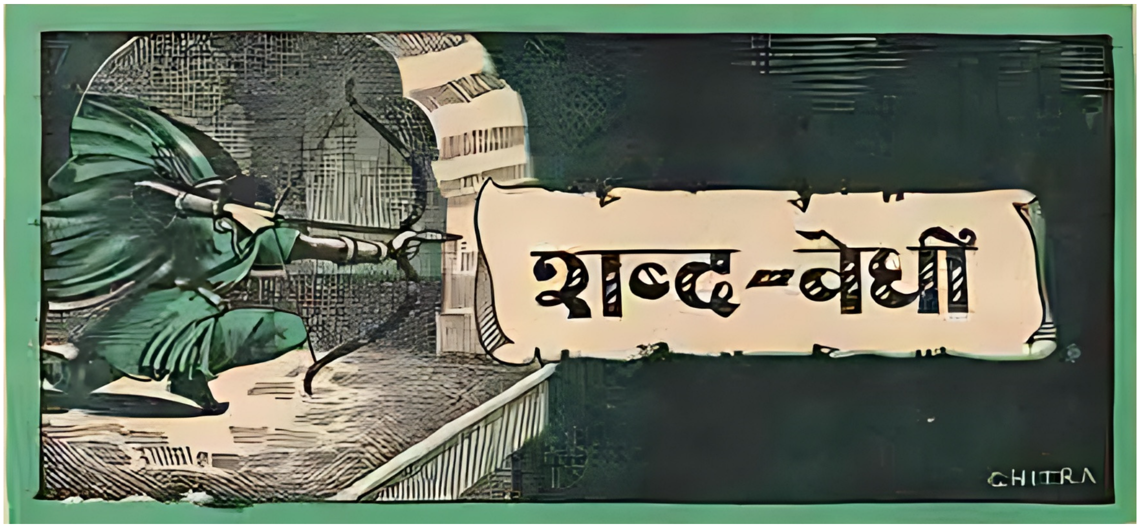

बिन्ध्याचल के आस-पास का हिस्सा, जिसे आज मध्य-प्रदेश कहा जाता है, उन दिनों छोटे-मोटे हिस्सों में बँटा हुआ था। हिन्दू और बौद्ध साम्राज्य विलुप्त हो गए थे। लेकिन मुगलों का पदार्पण अभी नहीं हुआ था। बड़ा मुश्किल जमाना था वह। छोटे- मोटे सामन्त, जिन्हें किसी का डर न रह गया था, आपस में लड़ते रहते थे। सारे देश में अराजकता और उच्छृङ्खलता छाई हुई थी। रजाओं के आपसी झगड़ों के मारे प्रजा के प्राण मुश्किल में फँसे रहते थे। फिर छोटे जमींदारों और जागीरदारों का तो कहना ही क्या ? हरेक की अपनी एक छोटी सी सेना रहती थी और उसकी मदद से वह लूट-मार मचाता रहता था। दुर्बल और निर्धन लोगों को तो कोई पूछने वाला ही न था।

बिन्ध्य के आस-पास की रियासतों में उन दिनों दो ही बड़ी कही जा सकती थीं। एक का नाम था बीसलपुर, दूसरे का कोसलपूर। इन दोनों रियासतों के स्वामी सूर्यवंशी राजा थे। उनके परदादा सगे भाई थे। फिर कोई घरेलू झगड़ा उठ खड़ा हुआ और बीसलपुर का राज्य दो हिस्सों में बँट गया। इस तरह कोसलपूर राज्य का प्रादुर्भाव हुआ।

तभी से इन दोनों रियासतों के स्वामियों में जानी दुशनी चलने लगी। कौन नहीं जलता कि भाई-भाई का झगड़ा कितना बुरा होता है!

हाँ, हमारी कहानी जिस समय से शुरू होती है उस समय एक शाम को कोसलपूर की सीमा पर के गिरिदुर्ग में युद्ध का डङ्का बजने लगा। गिरिदुर्ग था तो कोसलपूर रियासत में ही, मगर वह बीसलपुर को भी छूता था। दुर्ग के स्वामी का नाम था भीमसिंह। फिलहाल वे सैन्य-सहित किले के बाहर रामनगर गए हुए थे। उनकी गैरहाजिरी में किला उनके पुरोहित और दिली दोस्त सोमशर्मा के सुपुर्द था।

डङ्के की आवाज़ सुनते ही, जो मर्द रामनगर नहीं गए और किले में ही रह गए थे, वे सभी अपना अपना काम-धाम छोड़ कर दौड़े और कचहरी के पास जमा हो गए। यहाँ बीस-पच्चीस साल का एक हथियारबन्द हट्टा-कट्टा नौजवान, घोड़े पर सवार खड़ा था। उसी का नाम विजयसिंह था। उसे मीमसिंह ने बचपन से पाल रखा था।

किले के रहने वाले जो वहाँ जमा हो गए थे, एक दूसरे से पूछ रहे थे कि बात क्या है? यह देखकर उस नौजवान ने बताया कि "कोसलपूर और बीसलपूर

राज्यों के बीच फिर से लड़ाई छिड़ने वाली है। इसलिए भीमसिंहजी का आदेश है कि जितने सैनिक जमा किए जा सकें, रामनगर भेजे जायें।" उस नौजवान ने यह भी बताया कि सिपाहियों के उस जत्थे का सरदार रामसिंह होगा और सोमशर्माजी स्वयं आकर इस विषय में आज्ञा देंगे।

यह खबर सुन कर लोग आपस में तरह तरह की बातें करने लगे। उन बातों से साफ जाहिर होता था कि दुर्ग के स्वामी भीमसिंह को कोई नहीं चाहता। इतने में घोड़े पर सवार रामसिंह भी वहाँ आया। आते ही उसने कहा-"तैयार हो जाओ सब लोग। दिन रहते चल देना है यहाँ से!" रामसिंह दुर्ग के स्वामी भीमसिंह का दाहिना हाथ था। उसके हुक के मुताबिक लोग जहाँ के तहाँ तैयारी करने लगे। रामसिंह ने एक आदमी को बुला कर पूछा- "बूढ़ा गङ्गादीन कहाँ गया ? दिखाई नहीं देता !"

"शायद खेत गया होगा!" उस आदमी ने जवाब दिया। बूढ़े गङ्गादीन का खेत किले के बाहर था। विजयसिंह और रामसिंह ने अपने घोड़े उस और दौड़ा दिए।

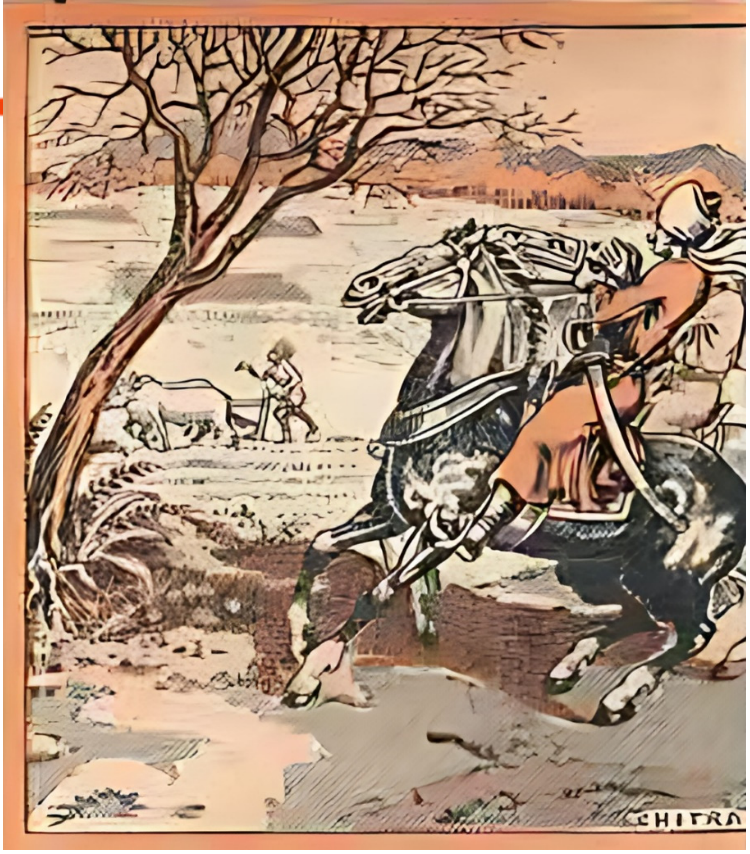

बूढ़ा गङ्गदीन अपने खेत में काम करते हुए कुछ गुनगुना रहा था। इन दोनों के आने की आहट उसने शायद नहीं सुनी। सिर झुकाए उसी तरह काम में लगा रहा।

"ओ भैया गंगू ! बुलावा आया है तुम्हारे लिए। सोमशर्माजी का हुक्म है कि किले में आकर सिपाहियों के अगुवा बनो!" रामसिंह ने कहा ! "क्या बात है ? तुम तो यही हो न ?" गङ्गदीन ने हँस कर कहा। "नहीं, वे यहाँ नहीं रहेंगे। किले में जितने आदमी है, सबको जमा करके रामनगर ले जाना है इन्हें। यह भी भीमसिंहजी का हुक्म है।" विजय ने कहा।

"फिर मैं यहाँ अगुवा बनूँगा किसका ?" गङ्गादीन ने पूछा। छः सिपाहियों के साथ सोमशर्माजी किले में ही रहेंगे !" रामसिंह ने जवाब दिया। लेकिन गङ्गादीन ने उसका जवाब नहीं सुना। वह जङ्गल की तरफ गौर से देख रहा था। "क्या देख रहे हो इतने गौर से ?" रामसिंह ने पूछा। "चिड़ियों को देख रहा हूँ।" गङ्गादीन ने कहा। वहाँ से दो सौ गज की दूरी पर पेड़ो के एक घने झुण्ड के ऊपर बहुत सी चिड़ियाँ तितर-बितर मँडराती चीख रहीं थीं। "अरे ! चिड़ियों को क्या देख रहे हो?" रामसिंह ने कहा।

"यही तो नादानी है। चिड़ियाँ जङ्गल में पहरा देती है। ज्यों ही कोई अजनबी जङ्गल में घुसा कि वे चीखने-चिल्लाने लगती हैं। उन्हें देखने से हमें सब पता लग जाता है। मान लो कि उस पेड़ों के झुरमुट में दुश्मन छिपे हुए हैं। तुम्हें इसका पता कैसे लगे ?" गङ्गादीन ने यहा।

"दुश्मन कहाँ से आयेंगे यहाँ ? रामनगर में तो अपनी ही फौज है।" राम सिंह ने कहा।

"अरे पागल ! भीमसिंह और उसके नौकरों पर वार करने के लिए दुश्मन बाहर ही से क्यों आएँ ? आस-पास में ऐसे कौन से लोग हैं जो हम से नफ़रत न करते हों ?" गङ्गादीन ने पूछा।

रामसिंह के मुँह से थोड़ी देर तक बात न निकली। वह जानता था कि गङ्गादीन का कहना सच है। "बस, बस, चलो, चलें ! सोमशर्माजी गुस्सा होते होंगे।" उसने कहा।

इतने में न जाने कहाँ से भिन्नाता हुआ एक तीर आया और बूढ़े गंगू को छाती में चुभ गया। वह बात की बात में जमीन पर लोटने लगा। रामसिंह छलाँग

मार कर नज़दीक ही एक चट्टान की ओट में जाकर छिप गया। विजयसिंह कान पर तीर चढ़ा कर जङ्गल की तरफ देखने लगा। लेकिन जङ्गल विलकुल स्तब्ध था। कहीं एक पत्ती भी न हिल रही थी।

रामसिंह और विजयसिंह दर्द से तड़ाते हुए गंगू के पास गए। विजयसिंह ने, जिस से उसकी पीड़ा देखी नहीं गई, तीर बाहर निकाल डाला। बेचारे गंगू ने एक बार "हाय, राम" कह कर दम तोड़ दिया।

विजयसिंह ने हाथ में के तीर को उलट-पुलट कर देखा और कहा "तीर तो बड़ा अजीब है।" "देखूँ में भी जरा उसे।" यह कह कर रामसिंह ने तीर हाथ में लेता चहा। लेकिन विजय ने मना किया और हाथ से लहू पोंछ कर उसे दिखाया। उस तीर पर छोटे छोटे अक्षरों में खुदा था-"गंगू को शब्दवेधी का पुरस्कर।" "शब्द-वेधी ? शब्दवेधी कौन ? नाम तो झूठा मालूम होता है ! अच्छा, अब यहाँ बैठे रहने से क्या फायदा ? गंगू तो रहा नहीं। चलो, उसकी लाश ही को ले चला जय।" रामसिंह ने कहा।

दोनों मिल कर गंगू की लाश को उठा कर उसके घर की ओर ले चले, जो नज़दीक ही था। तुरन्त सोमशर्माजी को खबर भेज दी गई। थोड़ी ही देर में वे "क्यों भाई ! क्या हुआ ?" कहते हुए आए। "और क्या होगा ? गंगू मारा गया।" रामसिंह ने कहा। यह खबर सुनते ही सोमशर्माजी के माथे से पसीना छूट चला। मुँह सफेद फक हो गया। पाँव थर थर काँपने लगे। वे नज़दीक के आसन पर थके से बैठ गए। "बात क्या हुई !" अन्त में उन्होंने भरीए हुए गले से पूछा। तब विजय ने चुपके से उन्हें वह तीर ले जाकर दिखाया।

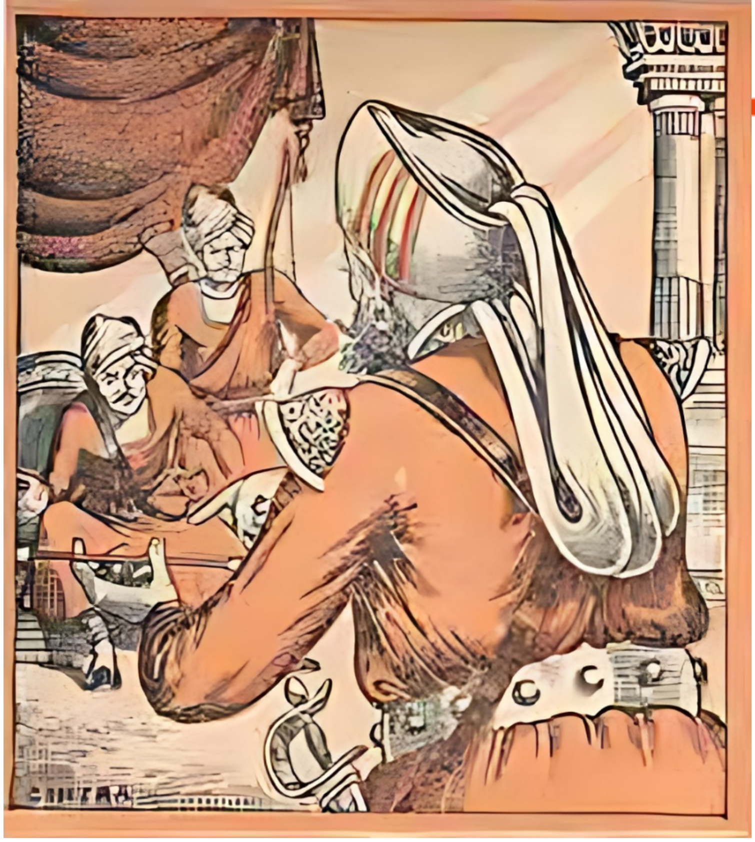

"शब्द-वेधी ? कौन है यह दुश्मन जो शब्दवेधी के नाम से यह धृष्टता कर रहा है? हमारे दुश्मन तो कम नहीं हैं। लेकिन इतनी नजाल किसकी हुई? कौन है यह ? बाबूसिंह ? नहीं नहीं। परवार होगा। नहीं; तो फिर कौन हो सकता है ?" सोमशर्माजी कहने लगे। "क्यों ? चण्डीदास क्यों नहीं ?" रामसिंह ने कहा।

"नहीं। ऐसे आदमी इतना साहस नहीं कर सकते। शीघ्र ही युद्ध छिड़ने वाला है। जरूर किसी बीसलपुरी की करतूत है यह!" सोमशर्माजी ने कहा। "वाह, आप भी क्या कहते हैं शर्माजी। क्या आप नहीं जानते कि भीमसिंहजी का कोई अपना पक्ष नहीं है ! जिस पक्ष की जीत होती है वही उनका अपना पक्ष है। भीमसिंहजी को दुश्मनों की कौन-सी कमी! कौन ऐसा घोर पाप है जो उन्होंने नहीं किया ! उनके मारे कितने घर उजड़ नहीं गए।" यों कहते कहते उत्तेजित रामसिंह सहसा रुक गया।

क्योंकि सोमशर्माजी धीमे से कहने लगे थे-"भैया ! तुम्हारी जवान बहुत तेज़ चलती है। उसे काबू में रखो ! पीछे पछताने से कोई फायदा नहीं।" फिर उन्होंने बात बदल कर कहा-"गंगू अब नहीं रहा। तुम्हें भेजने से काम नहीं चलेगा। तुम्हें यहीं रहना होगा। जमाना अच्छा नहीं है।"

फिर तीनों बाहर आए और अपने अपने घोड़ों पर सवार होकर कचहरी की ओर चले। वहाँ जो लोग जमा थे उनको देखकर सोमशर्माजी की जरा जान में जान आई। "कोई बात नहीं! इन जवाँमर्दों को देखकर भीमसिंहजी जरूर खुश होंगे !" उन्होंने सोचा। इतने में रामसिंह ने न जाने किसे देखा कि चौंक पड़ा और बोला-"वह कौन है?"

एक आदमी कचहरी के पीछे से भाग रहा था। "पकड़ लो उसे! देखते क्या हो ?" रामसिंह चिल्लाया और अपना घोड़ा दौड़ाने लगा। बहुत से लोग यह देख कर उसके पीछे पीछे दौड़ने लगे। लेकिन सबसे होशियारी का काम किया विजय ने। उसने धनुष पर तीर चढ़ा कर छोड़ दिया। लेकिन निशाना ठीक नहीं था। तीर उस अजनवी के घोड़े को छूता हुआ चला गया।

लेकिन थी उसकी तकदीर अच्छी। सब के देखते देखते वह जङ्गल में घुस गया और आँखों से ओझल हो गया। पीछा करने वाले निराश होकर लौटने लगे। इतने में नारायण, सोमशर्माजी का एक नौकर, एक पुर्जा ले आया और कहने लगा- "लीजिए, देखिए तो यह क्या है ?" उस पर एक अजीब गाना लिखा हुआ था। उसे सोमशर्माजी पढ़ने लगे-

मेरे पास चार हैं तीखे चौखे बाण

वे हर लेंगे झट जरूर दुष्टों के प्राण

एक बाण जो लगा मरा बस गङ्गदीन

मिला दुष्ट को दण्ड बैर निभाकर प्राचीन

रामसिंह को हेतु छिपा रखता एक बाण

सोमनगर को जला दिया उसने शैतान।

दुष्ट सोमशर्मा के हित रखा एक बाण
अभयसिंह की भी उसने ही ले ली जान
भीमसिंह के हेतु बचा अब अन्तिम बाण
बचा नहीं सकता है कोई उसके प्रण
दुष्टों ! याद करो अब अपनी सब करतूत
राह देखते तुम सबकी बस यमदूत

भवदीय

शब्द बेधी और उसके साथी।

यह पढ़कर सोमशर्मा चिल्लाने लगा- "हाय हाय! देखो तो, किस तरह सफेद झूठ बोल रहा है। कहता है कि मैंने अभयसिंह को मरवा डाला। भला इससे बढ़कर और कौनसा झूठ हो सकता है ?" वह कहने लगा। तब रामसिंह ने नज़दीक जाकर उसके कान में कुछ फुसफुसा दिया। तुरन्त उसका मुँह बन्द हो गया। वह घबराई नजरों से बिजयसिंह की तरफ देखने लगा। उसका कारण बिजय को भी मालूम था। क्योंकि उसीके पिता का नाम अभयसिंह था। उसकी हत्या का सच्चा हाल तो कोई नहीं जानता था, मगर यह सब को मालूम था कि किसी ने उसके पिता का गिरदुर्ग में ही खून कर डाला था।

उस खून के बारे में उस समय बहुत चीख-पुकार मची थी। कुछ पूछ-ताछ भी की गई थी। लेकिन ज़माना अच्छा नहीं था। इसलिए न अपराधी ही पकड़ा गया और न अपराध का दण्ड ही दिया जा सका।

आखिर सोमशर्माजी ने रामसिंह की सलाह लेकर सब बातें एक चिठ्ठी में लिखी और विजय के हाथ में रख दी। फिर उसे इन सैनिकों को साथ लेकर भीमसिंहजी के पास जाने का हुक्म दिया। जब कहना-सुनना सब हो गया तो विजयसिंह चिठ्ठी कमरबन्द में खोंस कर उन सैनिकों के साथ रामनगर को रखना हुआ।

[अभी और है ।]

किशनराम एक छोटा सा व्यापारी था। गङ्गा किनारे उसकी एक छोटी-सी धान कूटने की मिल थी। वह मिल तो थी छोटी-सी; मगर लोग जानते थे कि किशनरान बहुत ईमानदार आदमी है। इसलिए सब के सब उसी के पास धान कुटाने जाते थे।

जितना धान कूटने के लिए जाता था, उसका बीसवाँ हिस्सा किशनराम कुटाई की मजूरी के रूप में ले लेता था। उसके पास आने वालों में ज्यादातर गरीब लोग हो होते थे। उनमें एक ही ऐसा जमींदार था जो अपने धान के बोरे गाड़ियों में लदवा कर हर पन्द्रह दिन में एक बार भेजा करता था।

एक दिन उस जमींदार के यहाँ से धान के कुछ बोरे गाड़ी में लद कर आए। जमींदार के नौकरों ने गाड़ी पर से बोरे उतारे और मिल के अन्दर डाल कर, वहाँ से किसी काम पर चले गए। अपने सामने पड़े हुए उन बोरों को देख कर किशनराम ने सोचा-"दस बोरे यहाँ पड़े हुए हैं। आधा बोरा धान तो मजूरी के तौर पर मुझे मिलेगा ही। क्या हुआ यदि मैंने जरा ज्यादा ही धान ले लिया। संसार में कौन ऐसा आदमी पैदा हुआ होगा जिसने कभी न कभी कोई बेईमानी न की हो !" यह सोच कर उसने अपनी मजूरी से जरा ज्यादा ही धान निकाल लिया और उसे एक जगह ले जाकर छिपा दिया।

उसने इस तरह थोड़ी बेईमानी तो की, मगर तब से उसका दिल बड़ा बेचैन रहने लगा। कुछ दिन तक तो वह बहुत ही मनमाना सा रहा और न जाने, क्या क्या सोचता रहा। अन्त में एक दिन जब एक गरीबिन अपने धान का बोरा वहाँ छोड़ गई तो उसे देख कर किशनराम ने अपने मन

कुमारी कृष्णा

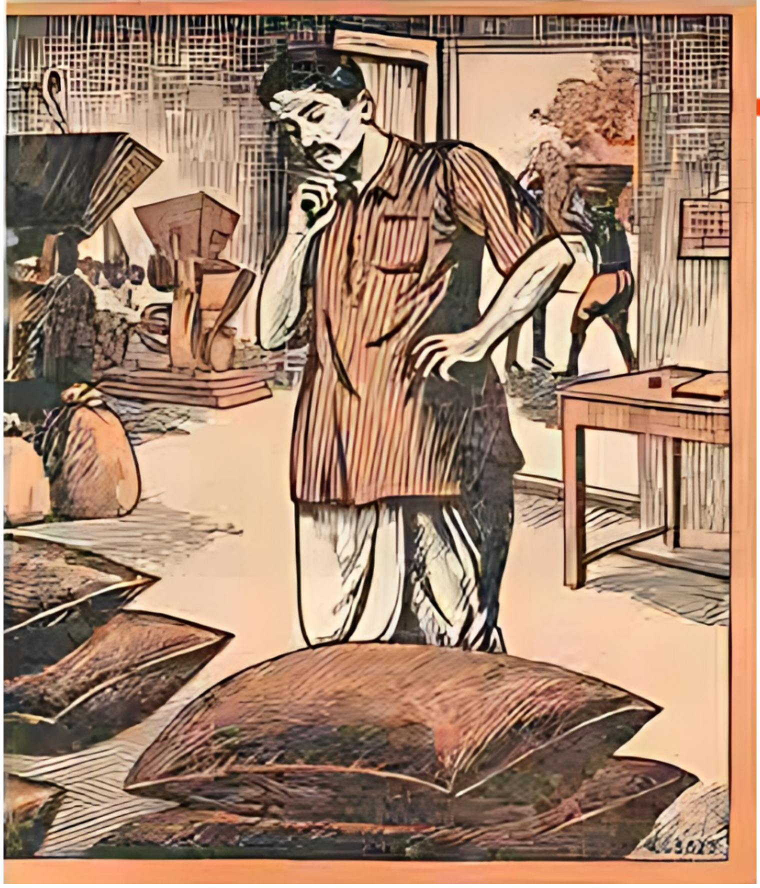

इस तरह बेईमानी का पैसा ज्यों ज्यों बढ़ता गया; त्यों त्यों किशनराम के मन की शन्ति भी मिटती गई। कई दफे उसने सोचा-"चलूँ, उस जमींदार के पास। अपना कसूर कबूल करके माफ़ी बाँग लूँ।" लेकिन इस में उसकी हेठी जो होती थी !

आखिर बहुत सोचने-विचारने के बाद किशनराम ने तय किया- "जमींदार साहब को मेरे ऊपर कोई शक नहीं है। वे अब भी धान मेरे ही यहाँ भेजते हैं। गलती सुधार लेने का मौका चूक नहीं गया। अब एक काम करूँगा मैं। अपनी मजूरी पूरी नहीं लूँगा। इस तरह मैंने उनका जितना माल खाया है उतना भर दूँगा। बस मेरा पाप कट जाएगा।"

यह तय कर उसने हर बार ऐसा ही करना शुरू किया। तब से उसके मन को जरा चैन मिलने लगा।

जमींदार साहब के नौकर धान हमेश तौल कर ही भेजते थे। और जब चावल घर आता तो उसे भी तौल लेते थे। कई बार उन्होंने जमींदार साहब से शिकायत की कि चावल कम आया है। लेकिन जमींदार साहब ने उनकी शिकायतों पर कोई ध्यान

में सोचा-"मैंने उस समय बेईमानी तो की थी; मगर कोई बात नहीं। चोरी से मैंने जितना धान लिया था, उतना इस बारे में रख दूँगा। इस तरह जो पुण्य मिलेगा उससे मेरा पहला पाप दूर हो जाएगा।" यह सोच कर उसने वैसा ही कर दिया।

उसके बाद पन्द्रह दिन और बीत गए। फिर एक बार जमींदार के बोरे आए। किशनराम ने, जिसे चोरी का चसका लग गया था, फिर एक बार बेईमानी की और उस पाप का बदला फिर पहले की ही तरह पुण्य करके चुकाया। इस तरह पाप-पुण्य करते दिन बीतते गए।

नहीं दिया। उन्होंने कहा- "किशनराम अपना आदमी है और बहुत ईमानदार है। वह कभी ऐसा नहीं करेगा।" उनके मन में जरा भी शक न हुआ।

फिर एक बार जब नौकरों ने कहा कि चावल ज्यादा आया है तो वे हँस कर बोले-"मैंने तो पहले ही कहा था न कि वह बहुत पुराना आदमी है और बहुत ईमानदार है।"

इधर किशनराम मन ही मन बहुत खुश हो रहा था कि उसकी साध पूरी हो गई। यहाँ तक कि उसने एक बार अपनी मजूरी बिलकुल नहीं ली।

जब जमींदार साहब के नौकरों ने यह बात उन्हें कहीं तो वे तुरन्त उठे और किशनराम के यहाँ जा पहुँचे। उनको देख कर किशनराम हक्का-वक्का रह गया। उसने सोचा-"अब मेरा सारा भेद खुल गया है।" "क्यों भई ! हमने सुना है कि तुम तो अपनी नजूरी लेते ही नहीं आजकल। क्यों, क्या बात है? इस तरह खैरात करने से तुम्हें घाटा नहीं होगा?" जमींदार साहब बोले।

उनके वचन सुन कर किशनराम के अचरज का ठिकाना न रहा।

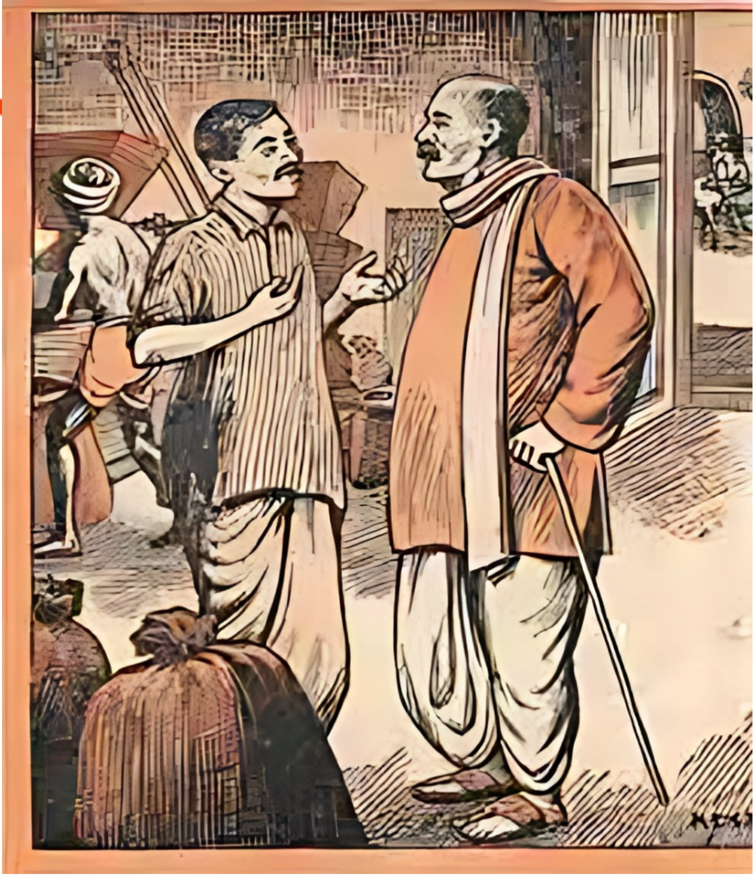

वह रोते हुए जमींदार साहब के पैरों पर गिर पड़ा और उन से सच्ची बात बता दी। फिर बड़े दीन स्वर में उन से आफ़ी माँगी। जमींदार साहब को उस पर बहुत तरस आया। उन्होंने उसे दिल से नाफ कर दिया और वचन दिया कि यह भेद वे किसी पर नहीं खोलेंगे।

घर लौट कर उन्होंने नौकरों से कहा-"बेचारा किशनरान बड़ा भुलक्कड़ है। अपनी मजूरी लेना ही भूल गया था। उसे याद दिला आया कि फिर कभी ऐसा नहीं करना !"

उस दिन से नौकरों को भी कभी शिकायत करने का मौका न मिला।

किसी दैत्य के एक बगीचा था। बहुत से लड़के आकर उस में खेला करते थे। तरह तरह के पेड़-पौधों से भरा हुआ वह बगीचा बहुत सुन्दर लगता था। पेड़ों की डालो पर चिड़ियाँ चहचहाती रहती थीं। हरी-भरी घास इस तरह बिछी हुई थी जैसे किसी ने मुलायम कालीन बिछाई हो। उस बगीचे में खेल कर बच्चे बहुत आनन्द पाते थे।

एक दिन दैत्य घर लौटा। सात बरसों तक वह एक मित्र के घर रहा था। अब जो लौटा तो लड़कों को अपने बगीचे में खेलते देख कर बहुत गुस्सा आया। यह चिल्लाया-"तुम सब यहाँ क्या कर रहे हो ?" उसकी कर्कश आवाज सुन कर लड़के डर गए और तुरन्त सिर पर पैर रख कर भाग खड़े हुए।

अब दैत्य ने निश्चय किया कि किसी को इस बगीचे में आने नहीं देना चाहिए। इसलिए उसने उस के चारों ओर ऊँची चहरदीवारी बनवाई। इतना ही नहीं फाटक के पास एक तख्ता लगा दिया कि बिना इजाजत इस बगीचे में कोई कदम नहीं रखे।

अब बच्चों के खेलने के लिए कहीं जगह बाकी न रह गई। सड़कों पर रोड़े थे, और धूल उड़ती थी। नन्दनबन से सुन्दर उस बगीचे की याद करके वे बहुत उदास हो गए।

बसन्त ऋतु आई। जहाँ देखो, फूल खिल उठे। चिड़ियों की सुरीली आवाजें गूँजने लगी। लेकिन दैत्य के उस बगीचे में शिशिर ऋतु का अड्डा जमा रहा। बच्चों के बगैर उस में न चिड़ियाँ चहचहाना चाहती था, न फूल खिलना चाहते थे। एक बार एक छोटी सी दूब ने बाहर झाँका। लेकिन फाटक पर राक्षस की तख्ती टँगी देख कर डर के मारे मुँह छिपा लिया।

हरदयालसिंह

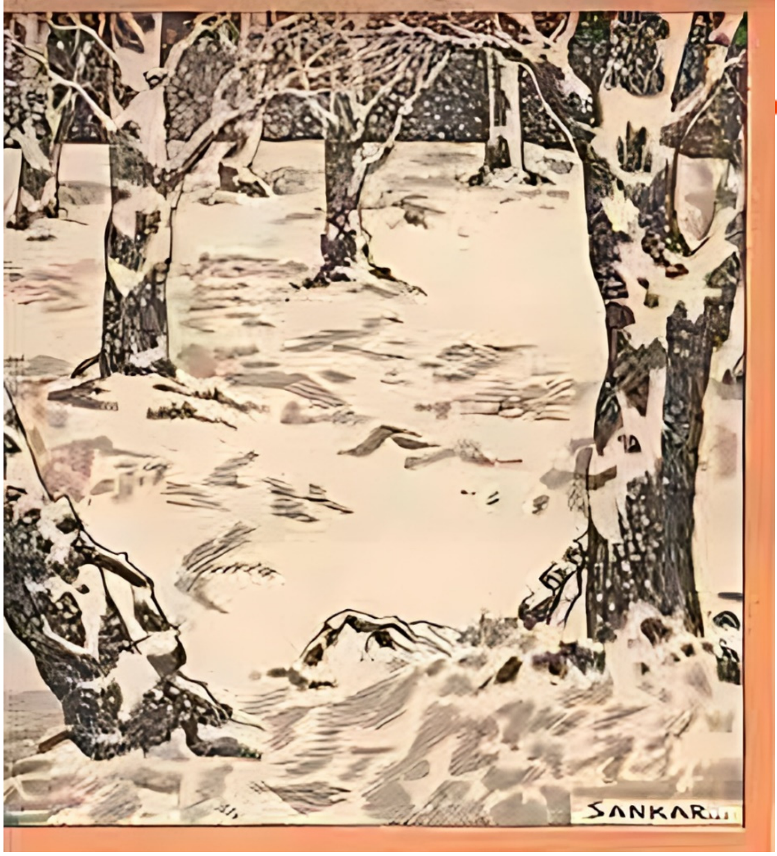

अब सरदी और पाले की खुशी का ठिकाना न था। उनको खदेड़ने वाली बसन्त ऋतु इस बाग में नहीं घुस सकती थी। दोनों के दिन अब यहाँ बड़े मौज से कट रहे थे।

बरफ पड़ने लगी। सारी जमीन सफेद हो गई। पेड़ों की डालें भी सफेद दीखने लगीं। शीत-वायु का अन्धड़ चलने लगा। उससे दैत्य के घर को बहुत नुकसान हुआ। खिड़कियों में लगे शीशे टूट-फूट गए। "इस बार वसन्त के आने में इतनी देर क्यों हुई ?" दैत्य ने अचरज से सोचा। कारण बिलकुल समझ में न आया।

एक दिन सबेरे जब दैत्य जगा तो कहीं से सुरीला गाना सुनाई दिया। खुशबू से लदी बयार चलने लगी। दैत्य ने सोचा-"शायद वसन्त ऋतु आ गई है।" और खिड़की से बाहर झाँक कर देखा।

बाग की चहर दीवारी में एक जगह एक बड़ा सुराख हो गया था।

उस में से होकर एक एक कर लड़के सब अन्दर घुस गए थे। पेड़ की डालों पर वे झूल रहे थे और पेड़ खुशी से झूल रहे थे। हरी-भरी घास के ऊपर छोटे छोटे सफेद फूल मुसकुरा रहे थे। विहङ्गों के कल-कूजन से सारा बाग गूँज रहा था।

लेकिन बाग के एक कोने में एक छोटा-सा लड़का मुँह लटकाए खड़ा था। बेचारा बहुत छोटा था, इसलिए पेड़ पर वह नहीं चढ़ सकता था।

यह देख कर दैत्य का हृदय पिघल गया। "मैं केतना स्वार्थी हूँ। इसीसे यहाँ बसन्त ऋतु नहीं आई थी।" उसने सोचा।

तुरन्त वह उस पेड़ की तरफ चला। दैत्य को देखते ही लड़के भागने लगे। उन्हें

इस तरह भागते देख दैत्य को बहुत दुःख हुआ। कहीं फिर शिशर ऋतु न आ जाय !

बाग के कोने में वह लड़का खड़ा आँसू बहा रहा था। उसने दैत्य को देखा नहीं। इसलिए भागा भी नहीं। नजदीक जाकर दैत्य ने धीरे से उसे उठा लिया और डाल पर बिठा दिया। तुरन्त उस पेड़ में हजारों फूल खिल उठे, सैकड़ों चिड़ियाँ चहचहा उठीं। नन्हे बालक का चेहरा खुशी से चमकने लगा। उसने अपनी बाहें गले में डाल दी और दैत्य को चुम लिया। दूसरे बच्चे दूर से यह देख रहे थे। वे खुशी से तालियाँ बजाने लगे। वे समझ गए कि दैत्य भी अच्छा आदमी है। इसलिए लौट आए।

"आज से यह बगीचा तुम्ही लोगों का है !" दैत्य ने कहा और पल भर में सारी चहरदीवारी गिरा दी। उस दिन से वह भी लड़कों के साथ खेलने लगा।

एक दिन दैत्य ने उनसे पूछा- "अच्छा, यह नन्हा सा लड़का कहाँ है ?"

"हमें नहीं मालूम। हमने उस लड़के को पहले कभी देखा भी नहीं था। लड़कों ने जवाब दिया। लड़कों को

खेलते देख कर दैत्य को खुशी तो होती थी; मगर उस नन्हें बच्चे को न देख उसका मन बहुत उदास रहने लगा।

यों बरसों बीत गए। दैत्य बूढ़ा हो गया। अब वह लड़कों के साथ खेल नहीं सकता था, इसलिए उनको खेलते देख कर सन्तोष कर लिया करता था। वह कभी कभी सोचता- "मेरे बगीचे में तरह तरह के सुन्दर फूल हैं। लेकिन ये बच्चे उनसे भी सुन्दर हैं।"

एक दिन दैत्य जगा तो उसका जी अच्छा नहीं था। शिशिर ऋतु को देख कर अब दैत्य को क्रोध नहीं आता था।

क्योंकि वह जान गया था कि वह बसन्त ऋतु का ही भाई है। जाड़े के दिनों में जो पेड़ लम्बी तन कर पड़े रहते हैं, वे बसन्त ऋतु के आने पर फिर फूलते हैं।

बाग के एक कोने में एक पेड़ फूलों से लदा हुआ था। उसकी डालें रुपहली थीं और फूल सुनहले थे। उस पेड़ के नीचे फिर वही बालक खड़ा दीखा जो उस दिन आँसू बहा रहा था।

बूढ़ा दैत्य फूला न समाया। वह उस पेड़ की ओर दौड़ा। नजदीक जाकर देखने पर दैत्य के क्रोध का ठिकाना न रहा। किसी ने उस नन्हें बच्चे के हाथ-पाँव में कील ठोंक दिए थे। "बोलो, तुम्हारी यह हालत किसने कर दी है ?" वह चिल्लाया। "बताओ; मैं अभी उस दुष्ट का काम तमाम कर दूँगा।" वह गरजा।

"यह प्रेम का घाव है।" वह नन्हा बच्चा बोला।

यह सुनकर दैत्य के बिस्मय का ठिकाना न रहा।

वह श्रद्धा के साथ उस बच्चे के सामने घुटने टेक कर बोला-"देव ! सच सच बताओ! तुम कौन हो ?"

"यह भी कोई सवाल है ? आज तुम मुझे अपने बगीचे में खेलने दो ! क्योंकि एक दिन तुम भी मेरे बगीचे में खेलने आओगे ! जानते हो. मेरा बगीचा कहाँ है ? मेरा बगीचा स्वर्ग में है।" इतना कह कर वह बच्चा मुस्कुरा पड़ा। उसकी मुसकान की ज्योत से सारी दिशाएँ जगमगा उठीं।

उस दिन शाम को जब लड़के उस बगीचे में खेलने आए तो उन्होंने देखा कि बेचारा बूढ़ा दैत्य उस पेड़ के नीचे मरा पड़ा है। उसके बदन पर तरह तरह के फूल बिखरे हुए थे और उन फूलों की अलौकिक लुगन्ध से सारा बगीचा गमक रहा था।

किसी समय कमलनगर पर वीरसेन नाम का राजा शासन चलाया करता था। वह बड़ा बहादुर आदमी था। उसकी तलवार का लोहा सब लोग मानते थे।

एक दिन जब वीरसेन दरबार में बैठा हुआ था तो एक औरत रोती-धोती उसके सामने आकर खड़ी हो गई। राजा वीरसेन ने उस औरत को तसल्ली दी और पूछा कि बात क्या है।

तब वह औरत बोली-"देव ! मेरा नाम चन्द्रावती है। मेरे पति को कालकेतु नाम के एक अत्याचारी राजा ने कैद करके बिना किसी कसूर के काल कोठरी में डाल रखा है। मैं यह अच्छी तरह जानती हूँ कि आप बड़े प्रतापी राजा हैं। ऐसा कोई काम नहीं जो आप नहीं कर सकते। इसलिए इस दीना पर कृपा करके मेरे पति को छुड़ा दीजिए। यही मेरी विनती है।"

"लेकिन मुझे तो मालूम ही नहीं कि कालकेतु नाम का कोई राजा भी है।" बीरसेन ने कहा।

तब उस औरत ने आँसू पोंछ कर कहा-"लेकिन हुजूर ! यह तो बड़े अचरज की बात है। क्योंकि कालकेतु आप के पड़ोस ही का राजा है। यह बड़ा अत्याचारी है और जिसको चाहता है उसे किले में बन्द करके खूब सताता है।"

"अच्छा, तुम कोई फिक्र न करो। मैं उसकी खबर लूँगा और तुम्हारे पति को बचाऊँगा।" इतना कह कर वीरसेन ने उस औरत को समझा-बुझा कर वहाँ से भेज दिया।

दूसरे दिन सवेरे ही उठ कर राजा बीरसेन कालकेतु से लड़ने के लिए निकला।

अनेकों जङ्गल, झाड़ी, पहाड़ और नदियाँ वगैरह पार करते हुए वीरसेन कुछ दिन बाद कालकेतु के किले के नजदीक जा पहुँचा।

उसका इरादा था कि वह खुद ही द्वन्द-युद्ध में कालकेतु को हराए।

मगर किले के नज़दीक जाकर देखा तो फाटक बन्द था। वह किवाड़ पर लात मारकर चिल्लाने लगा-"इस किले का जो राजा हो, वह बाहर आए। बीरसेन उसे युद्ध के लिए ललकारता है।" तुरन्त किवाड़ खुल गए। एक बड़ा ही कुरूप आदमी बाहर आया और खिरखिलाकर बोला-"अच्छा ! तो तुम्ही वीरसेन हो ? मेरा नाम कालकेतु है। तुम मुझ से लड़ने आए हो ?" उसने कहा।

कालकेतु का रङ्ग ढङ्ग देख कर वीरसेन को बहुत क्रोध आ गया। उसने तुरन्त म्यान से तलवार निकाल ली और दुश्मन को ललकारा। कालकेतु फिर हँसते हुए बोला-"वीरसेन ! शायद तुम समझते हो कि तुम्हारी तलवार तुम्हारे ही काबू में है। तुम नहीं जानते कि इस किले के चारों ओर बिना मेरी इजाजत के हवा भी नहीं चल सकती।"

अब तो वीरसेन को बहुत गुस्सा आया और उसने तलवार उठाई। लेकिन आश्चर्य ! उसका हाथ जो उठा तो उठा ही रह गया। हाथ की तलवार वैसे ही हवा में टँगी रह गई। कालकेतु ने मुस्कुराकर कहा-" मैं जानता हूँ कि तुम यहाँ क्यों आये हो। अच्छा, उस औरत के पति को मैं छोड़ दूँगा। लेकिन उसके बदले तुम्हें कैद कर लूँगा। बोलो, क्या कहते हो ? मञ्जूर है ?" यह कह कर वह वीरसेन के नजदीक आया।

बेचारा वीरसेन सन्न रह गया। उसकी सारी बीरता किसी काम न आई। वह खड़ा खड़ा सोच ही रहा था कि कालकेतु फिर बोला-"तुम्हें कैद करना मुझे भी उतना अच्छा नहीं लगता। इसलिए सुनो-मेरे एक सवाल का जवाब एक साल के अन्दर दे दो। मैं तुम्हें माफ करके छोड़ दूँगा।"

"अच्छा! बताओ अपना सवाल।" लाचार वीरसेन ने पूछा।

"सवाल तो बड़ा आसान है। हाँ, जवाब देना जरूर मुश्किल है। अच्छा तो सुनो मेरा सवाल। औरत सब से बढ़ कर क्या चाहती है ?" एक साल के अन्दर इस का जवाब जान कर मुझे बता देना होगा। कालकेतु ने अपना सवाल बताया। "बहुत अच्छा" कहकर वीरसेन वहाँ से चल पड़ा। उसने अपनी राजा की पोशाक उतार कर एक गठरी बाँध ली और एक मामूली प्रजा के भेष में गाँव-गाँव शहर-शहर भटकने लगा। कालकेतु का सवाल उसने सैकड़ो औरतों के सामने दुहराया। जवाब भी उसे तरह तरह के मिलने लगे। किसी ने कहा-"औरत सब से बढ़ कर रूपवान पति चाहती है।" किसी ने कहा-"नहीं, वह धनवान पति चाहती है।" और कुछ ने कहा-"नहीं, नहीं, वह बुद्धिमान पति को ही ज्यादा चाहती है।" इस तरह एक का जवाब दूसरे से न मिलता था।

इतने में साल बीतने को आया। मीयाद चुकने को थी। इसलिए अपने वादे के मुताबिक वीरसेन कालकेतु के पास लौट चला।

कुछ दिन तक सफर करके एक रात वह उसके किले के नज़दीक जा पहुँचा। मगर वहाँ जाकर देखा तो रात होने की वजह से किले के फाटक बन्द थे। वीरसेन ने सोचा-"रात यहीं किले के बाहर काट दूँगा और सवेरे कालकेतु से मिलूँगा।" यह सोच कर वह एक पेड़ के नीचे लेटा रहा।

आधी रात हुई थी कि अचानक उसे किसी औरत के रोने की आवाज सुनाई दी। वीरसेन की तन्द्रा टूट गई। उसने चौंक कर उस तरफ देखा तो दूर पर एक टिमटिमाती सी रोशनी दिखाई पड़ी।

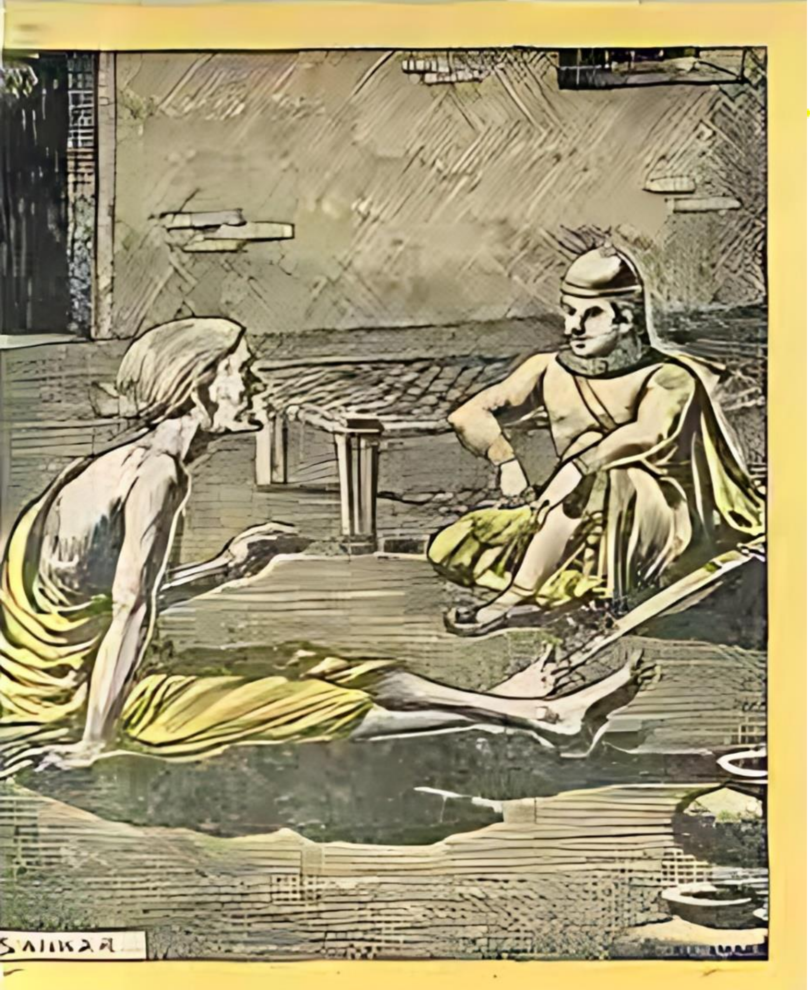

वह उठ कर सीधे रोशनी की तरफ चल पड़ा। वहाँ जाने पर उसे एक खूँसट बुढ़िया रोती हुई दिखाई दी।

"इतनी गत गए क्यों इस तरह से रही हो ?" वीरसेन ने पूछा।

"मेरी अम्सी साल की उमर हो गई है। लेकिन अभी तक व्याह नहीं हुआ। इसलिए करीब साठ साल से मैं इसी तरह रो रही हूँ।" उस बुढ़िया ने कहा।

बुढ़िया की ये बातें सुन कर राजा वीरसेन को बहुत अचरज हुआ। उसने सोचा-"इस बुढ़िया का तन बूढ़ा हो गया। मगर मन अभी बूढ़ा नहीं हुआ। देखो, इतनी उमर में भी यह व्याह करना चाहती है।"

इधर बुढ़िया जो उसके अचरज की वजह जान गई थी, कहने लगी- "राजन ! आप के मन की बात मुझसे छिपी नहीं है। मैं यह भी जानती हूँ कि आप एक सवाल का जवाब जानने के लिए ही इस तरह भटक रहे हैं और वह जवाब आप को अभी तक नहीं मिला है। अच्छा, मैं आप के सवाल का जवाब बता दूँगी। लेकिन पहले बताइये, आप मुझे क्या देंगे?"

"जवाब बता दो। तुम जो मांगोगी सो दूँगा।" वीरसेन ने कहा।

"अच्छा तो सुन लो- कालकेतु का सवाल है-स्त्री सब से बढ़ कर क्या चाहती है ? स्त्री सब से बढ़ कर यही चाहती है कि सब लोग उसकी मर्जी के मुताबिक चलें।"

बुढ़िया का जवाब सुन कर वीरसेन को बहुत अचरज हुआ। वह मन ही मन उसकी सूझ की बहुत तारीफ़ करने लगा। उसने सोचा-"इस बार कालकेतु जरूर हार मान लेगा।"

वीरसेन सवेरे उठ कर कालकेतु के पास गया और बुढ़िया का जवाब दोहरा दिया।

कालकेतु को उसकी सूझ पर बहुत अचरज हुआ। उसने उसकी बड़ी प्रशंसा की और छोड़ दिया।

वीरसेन फूला न समाया और किले के बाहर आते ही सीधे उस बुढ़िया के पास जाकर बोला-"बोलो तुम क्या चाहती हो?" बुढ़िया उसकी नादानी पर हँसने लगी। आखिर वह बोली-"राजन ! मैं साठ साल से अपने दूल्हे की राह देख रही हूँ। फिर भी आज तक मेरी आशा पूरी न हुई। आज आप की कृपा से वह पूरी होने वाली है। या तो मुझसे खुद व्याह कर लीजिए या अपने यहाँ के किसी युवक से करा दीजिए।"

यह सुन कर वीरसेन के सिर पर मानो बिजली टूट पड़ी। कौन आँख रहते अन्धा बनेगा ? कौन ऐसा बेवकूफ जवान होगा, जो यह बला मोल लेने को राजी होगा ?

मगर उसने वादा जो किया था। लाचार वह उसे अपने साथ लेकर कमलनगर को लौट आया। बहुत दिन बाद घर लौटे हुए राजा की बड़ी आवभगत हुई। जगह जगह उत्सव मनाए जाने लगे।

लेकिन बेचारे वीरसेन का मन इन सब में नहीं था। वह बेचारा चिन्ता से घुला जा रहा था। यों उसे दिन दिन दुबला होते देख कर मन्त्री वगैरह कारण पूछने लगे। लेकिन उसने किसी से कुछ नहीं बताया।

आखिर उसके भांजे रूपधर ने किसी तरह उसकी चिन्ता का कारण जान लिया। वह अपने मामू की चिन्ता दूर करने के लिए उस बुढ़िया से व्याह करने को राजी हो गया। कुछ दिन बाद व्याह हो भी गया। लोगों ने मन में क्या क्या सोचा, पता नहीं। पर प्रगट रूप से कुछ नहीं बोले। राज घराने का मामला था। किसकी मजाल थी कि जुबान तक हिलाए ? सोहाग-रात आई। एक सजे-सजाए कमरे में

दुल्हिन अपने पति का इन्तज़ार कर रही थी। रूपघर जब उस कमरे में गया तो उसके आश्चर्य का ठिकाना न रहा। उस कमरे में उसे उस बुढ़िया के बदले एक सुन्दर युवती दिखाई दी।

"तुम कौन हो ?" आखिर उसके मुँह से निकला।

"मैं ? मैं रूपधर की दुल्हिन हूँ। मैं ही यह बुढ़िया हूँ, जो थोड़ी देर पहले शाप से मुक्त हो गई।" उस सुन्दरी ने कहा।

रूपधर का अचरज और भी बढ़ गया। उसने पूछा-"सुन्दरी ! तुम्हारे ऊपर कैसा शाप था और तुम कैसे उससे मुक्त हो गई ?" तब उस युवती ने जवाब दिया-"हे राजकुमार ! अपने मामू की चिन्ता दूर करने के लिए ज्यों ही तुमने मुझसे व्याह करना मञ्जूर कर लिया त्यों ही मेरा आधा शाप दूर हो गया। बाकी आधे शाप को दूर करने के लिए मैं एक सवाल करूँगी। मेरा पूर्ण रूप से शाप मुक्त हो जाना तुम्हारे जवाब पर निर्भर होगा।"

तब रूपधर ने कहा-"अच्छा! बताओ अपना सवाल।"

"मैं हर रोज इस सुन्दर रूप में थोड़े ही समय तक तुम्हें दिखाई सकती हूँ। तुम बताओ कि किस किस समय पर में यह रूप धरा करूँ ?" उस युवती ने सवाल किया।

"जब जब तुम्हारी मरजी हो! मैं इस मामले में कुछ नहीं बोलूँगा।" रूपधर ने बिना हिचकिचाए जवाब दिया।

उसका यह उत्तर सुन कर युवती रूप वाली वह बुढ़िया फूली न सताई। वह तुरन्त रूपधर के नजदीक आकर बोली-"तुमने सब कुछ मेरी मरजी पर छोड़ दिया और अपनी टाँग नहीं अड़ाई। इससे मेरा शाप छूट गया। अब मैं हमेशा इसी रूप में रह जाऊँगी। यह सुन कर रूपधर की खुशी का ठिकाना न रहा।

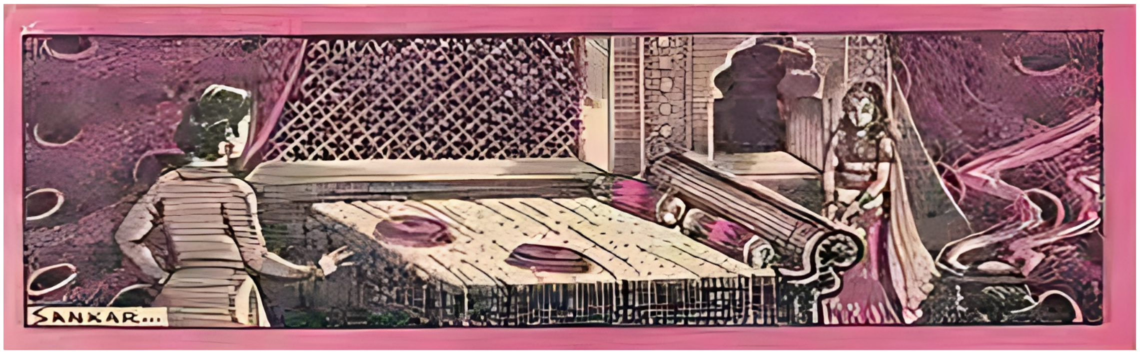

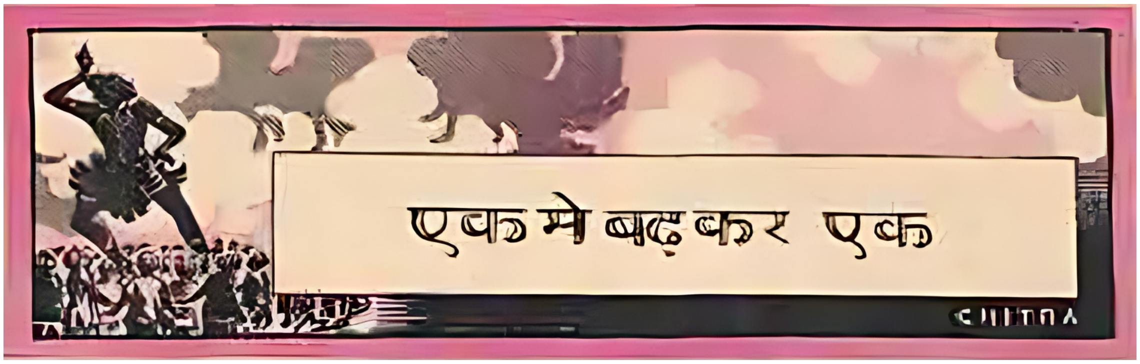

किसी समय हमारे देश में एक बड़ा निपुण मूर्तिकार रहा करता था। वह जिस प्रदेश में रहता था उस प्रदेश के राजा को मूर्तियों का बड़ा शौक था। एक दिन उसने इस मूर्तिकार को बुलवाया और ८ गज ऊँची महादेवजी की मूर्ति बनाने को कहा।

"इस में क्या लगता है? यह तो मेरे चाएँ हाथ का खेल है।" मूर्तिकार ने कहा और तीन महीने बाद राजा के इच्छानुसार एक महान मूर्ति तैयार कर दी। इस मूर्ति को देख कर राजा फूला न समाया। उतनी ऊँची मूर्ति उस जनाने में हमारे देश मैं कहीं नहीं थी। देश देश से लोग उसे देखने आने लगे और थोड़े ही दिनों में राजा का यश चारों और फैल गया। राजा ने मूर्तिकार को बहुत अच्छा इनाम दिया।

लेकिन मूर्तिकार जब वह इनाम लेकर अपने गाँव लौटने लगा तो राजा के मन में एक शङ्का हुई। उसने सोचा-"हो सकता है, और कोई राजा इस मूर्तिकार को बुलाए और इनाम का लालच देकर मेरी मूर्ति से भी बड़ी मूर्ति तैयार करा दे। तब तो मेरी मूर्ति को पूछने वाला कोई न रहेगा और मेरी कोई बड़ाई न रहेगी।" यह सोच कर उस कुकर्मी राजा ने मूर्तिकार का दाहिना हाथ कटवा कर छोड़ दिया, जिस से पह सुन्दर मूर्तियाँ न बना सके।

राजा की इस कृतघ्नता के कारण मन ही मन घुलता हुआ मूर्तिकार अपने गाँव लौटा और राजा से बदला चुकाने की फिराक में लग गया।

आखिर उसने उस राजा के दुश्मन बैनूर के राजा के पास जाकर अपनी राम-कहानी

सोमचन्द्र शर्मा

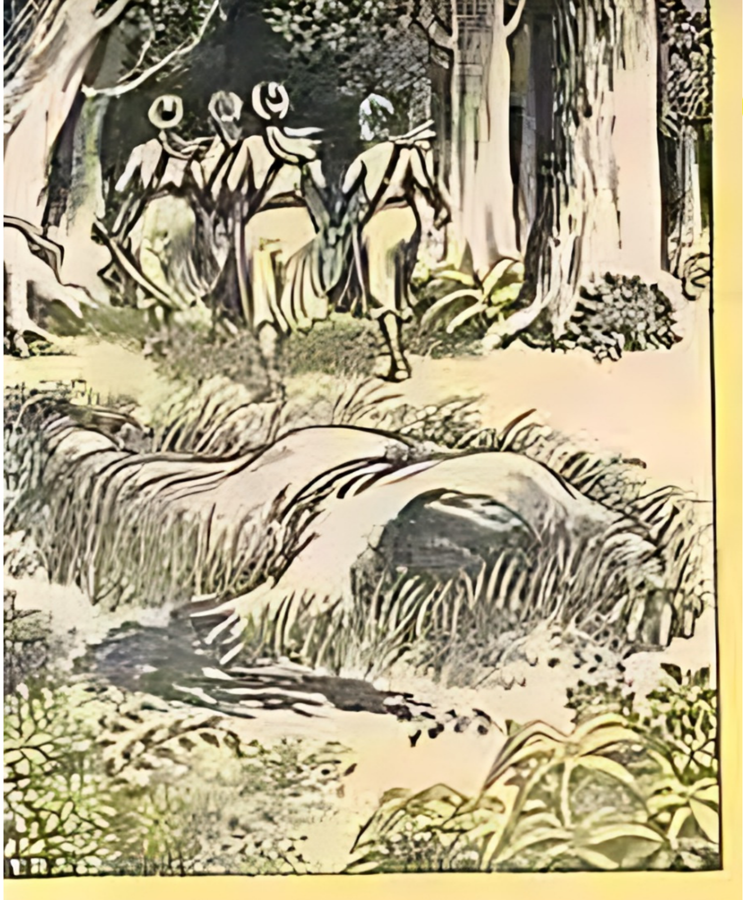

सुनाई और बोला-"राजन ! मैं लल्हा हो गया। लेकिन इससे क्या ?मेरी प्रतिभा कहीं नहीं गई। यह कह कर उसने अपने बाएँ हाथ से मूछों पर ताब दिया। यह देख कर बैनूर के राजा को बहुत अचरज हुआ। उसने कहा-"अच्छा, दाहना हाथ कट जाने पर भी तुम मुर्तियाँ बना सकते हो ?"

"बायाँ हाथ अभी बचा हुआ है हुजूर! जिस तरह वीर अर्जुन दोनो हाथों से तीर चलते थे, उसी तरह मैं भी दोनों हाथों में मूर्तियों आसानी से गढ़ सकता हूँ।" उसने कहा। "अच्छा ! तब तुम मेरे लिए एक मूर्ति ऐसी बना दो जो तुम्हारे देश के राजा की मूर्ति से भी बड़ी हो।" राजा ने हुक्म दिया।

"जरूर बना दूँगा। इस बार १२ गज ऊँची मूर्ति बना दूँगा।" मूर्तिकार ने कहा।

उस विश्वासघाती राजा से बदला चुकाने के इरादे से वह दूसरे ही दिन से काम में लग गया और कुछ ही दिनों में पहले से भी बड़ी एक मूर्ति बना दी। उस मूर्ति को देख कर बैनूर का राजा बहुत खुश हुआ। लेकिन पहले राजा के मन में जो शङ्का उठी थी वहीं अब इस के मन में भी उठी। मूर्तिकार कहीं दूसरी जगह चला जाय और इस से भी बड़ी मूर्ति बनाने लगे तो ! तब तो उसकी मूर्ति को पूछने वाला कोई नहीं रहेगा। अखिर पहले राजा को जो उपाय सुझा था वही इस राजा को भी सूझा। उसने इनाम बगैरह देने के बाद मूर्तिकार का बायाँ हाथ भी कटवा कर छोड़ दिया।

रस्सी जल गई, मगर ऐण्ठन नहीं गई। उसी तरह मूर्तिकार के दोनों हाथ कट गए; मगर बदला लेने का ख्याल दिल से न हटा। उसने श्रवण-बेलगोला के राजा के पास जाकर अपना दुखड़ा सुनाया और बोला-"देखिए तो हुजूर ! उन दोनों राजाओं की

कृतघ्नता ? मैंने उनके लिए दो अद्वितीय मूर्तियाँ बना दी और बदले में उन्होंने मेरे दोनों हाथ कटवा लिए। लेकिन इस से क्या ? मेरी प्रतिभा कौन चुरा सकता है ?" वह आवेश में कह गया।

"तो तुम दोनों हाथ के लूल्हे होकर भी मूर्तियाँ बना सकते हो ?" राजा ने अचरज से पूछा।

"खुद नहीं बना सकता तो क्या हुआ ? अपने दिमाग से काम लूँगा और चेलों से आपके लिए एक अपूर्व मूर्ति बनवा दूँगा।" मूर्तिकार ने जवाब दिया। "अच्छा। ऐसा ही करो।" राजा ने कहा।

दूसरे दिन से मूर्तिकार एक ऊँचे आसन पर बैठ कर अपने चेलों को आज्ञा देते हुए एक बहुत बड़ी मूर्ति बनवाने लगा। वही १९ गज गोमतेश्वर की मूर्ति थी हुए वही उसकी प्रतिभा और कला का अन्तिम चमत्कार थी।

क्योंकि पहले दोनों राजाओं के मन में जो आशङ्का हुई वही इस तीसरे राजा के मन में भी पैदा हो गई। इसने सोचा-"न रहेगा बाँस न बजेगी बाँसरी" और इस बार मूर्तिकार का सिर ही कटवा डाला।

बहुत दिन बीत गए और आज तीनों राजाओं की कब्रों पर धूल उड़ रही है। लेकिन आज भी मूर्तिकार की बनाई हुई तीनों मूर्तियाँ बैसे ही खड़ी हैं और उस अमर कलाकार के यश को चारों तरफ छिटका रही हैं।

उस अमांगे मूर्तिकार की प्रतिभा तो महान थी, लेकिन यह उसके किसी काम न आई। या ऐसा कहना चाहिए कि वह उसके काम तो आई मगर उस से वह अपने जीवन काल में कोई फायदा न उठा सका। उलटे वह प्रतिमा ही उस अमागे की मौत का कारण भी बन गई।

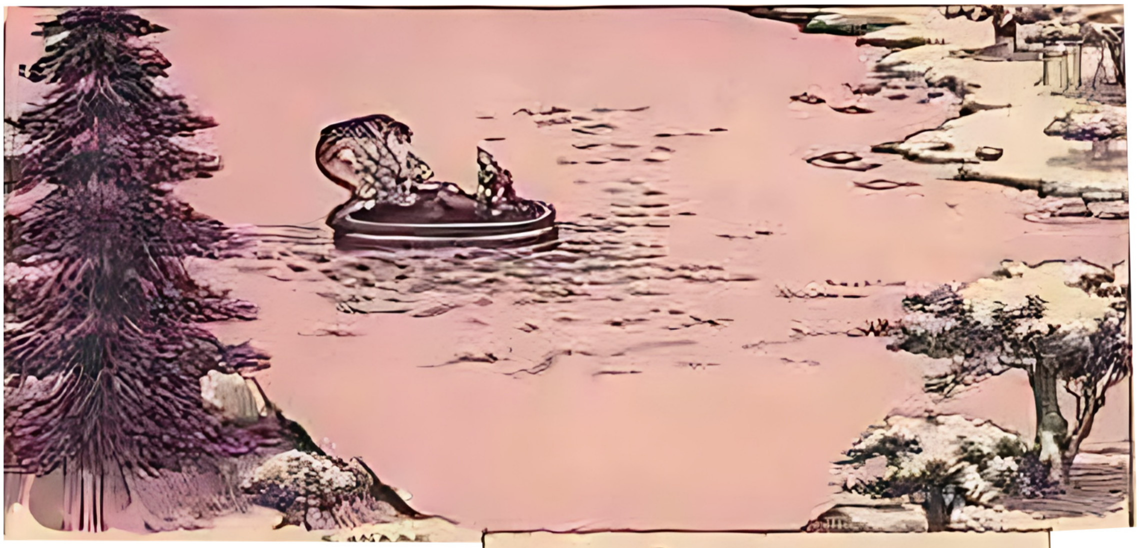

देवदार

प्रलय के बाद भगवान विष्णु ने फिर से सृष्टि प्रारम्भ की। कुछ दिन तक सृष्टि करने के बाद वे बहुत थक गए और आराम करने की सोचने लगे। लेकिन फिर शङ्का हुई कि मैं सो जाऊँगा तो इस सृष्टि की रक्षा कौन करेगा ? क्योंकि तब तक आदमी और जनवरों की पैदाइश नहीं हुई थी।

आखिर भगवान विष्णु ने पेड़ों को, जिन की सृष्टि हो गई थी, बुलाया और कहा-"जब तक मैं नींद से जाग न जाऊँ, तब तक इस सृष्टि की रखवाली का भार तुम्हारे ऊपर होगा।" इतना कह कर उन्होंने उन पेड़ों को पहाड़ों, घाटियों और मैदानों में भेज दिया और स्वयं निश्चिन्त होकर शेषनाग की पर सो रहे।

नीम, बादाम, बबूल, बरगद वगैरह पेड़ मैदानों में पहरा देने गए। बाँस, सागवान वगैरह कई पेड घाटियों में गए। मगर देवदार पहाड़ की ऊँची चोटियों पर डट गया। सभी पेड़ अपनी अपनी जगह खड़े होकर भगवान विष्णु के आज्ञानुसार पहरा देने लगे। लेकिन कुछ दिन बीतते ही बहुत से पेड़

वीरेन्द्र दत्त

थक गए और अपनी डालें झुका कर झपकियाँ लेने लगे। कुछ दिन और बीत गए और कुछ पेड ऊँघने लगे। और कुछ दिन बाद बाकी पेड़ भी जमहाइयाँ लेने लगे और डालें झुका कर सो रहे। जब आखिर भगवान विष्णु की नींद टूटी तो उन्होंने देखा कि सभी पेड़ मजे में सो रहे हैं। उन्हें बहुत गुस्सा आया। "इन पेड़ों की इतनी मजाल ? मेरी आँखें जरा बन्द हुई कि सभी मेरा हुक्म तोड़ कर खर्राटे लेने लगे।" उन्होंने सोचा। इतने में किसी ने पुकारा "देव"। भगवान ने सिर उठा कर देखा तो पहाड़ की ऊँची चोटी पर देवदार उसी तरह खड़ा था। "देव! मैं नहीं सोया। मैं आपकी सृष्टि की रखवाली कर रहा हूँ।" वह बोला। भगवान विष्णु 'देवदार' से बहुत खुश हुए और वर दिया कि वह हमेशा हरा-भरा बना रहेगा। तभी से उसका नाम भी देवदार पड़ गया।

अलकापुर के राजा का नाम विक्रमदेव था। उनका एक वीर सेनापति था। उसका नाम नीलकण्ठ था। एक विजय दशमी को राजा अपने मन्त्रियों और सेनापतियों के साथ बगीचे में बैठ कर बातें कर रहा था। रात का वक्त था और चारों ओर चाँदनी छिटक रही थी। उसी समय एक अजनबी घोड़ा दौड़ाते हुए वहाँ आया और घोड़े से उतर कर राजा के सामने जा खड़ा हुआ।

इस वेअदब आदमी को देख कर राजा ने क्रोध से पूछा-"तुम कौन हो ! यहाँ कैसे चले आए ?" "मैं एक वीर योद्धा हूँ।" उस आदमी ने जवाब दिया। "सो तो ठीक है। मगर तुम चाहते क्या हो ?" राजा ने पूछा। योद्धा चाहता है क्या ? इसके अलावा कि उसे किसी से लड़ने का मौका मिले। है कोई आपके दरबार में जो मुझसे लड़ने की हिम्मत रखता हो?" वह आदमी बोला। वहाँ जितने लोग जमा थे सब उस आदमी को देख कर डरने लगे। लम्बा तगड़ा, काला-कलूटा सा आदमी। हाथ में चमाचम चमकता हुआ फरसा था। उसे देख कर सब लोगों का मुँह सूख गया।

"हमारा वीर सेनापति नीलकण्ठ तुमसे लड़ने को तैयार होगा।" राजा ने हिचकिचाते हुए कहा और उधर नीलकण्ठ उठ खड़ा हुआ। लेकिन उस योद्धा ने हँस कर कहा-"मैं यहाँ लड़ने नहीं आया हूँ। देख लिया न यह फरसा ? तुममें से कोई भी बस, इसका एक बार अपनी गर्दन पर झेल ले। इसके बदले में अगले साल इसी दिन वह मेरे यहाँ आए और इसी फरसे से मेरी गर्दन पर एक बार कर ले।" उसकी यह शर्त सुन कर सब लोग सोच में पड़ गए। उस तेज़ फरसे का एक बार गर्दन पर झेल कर जिन्दा रहना वाकई नामुनकिन

रामसुमिरन पाण्डे

था। अगले साल बदला चुकाने की बात भगवान जाने !

सब लोग सन्न खड़े देख रहे थे और वह अजनबी इन्तज़ार कर रहा था। आखिर नीलकण्ठ ने उसके हाथ में से फरसा ले लिया और पूरा जोर लगा कर उसकी गरदन एक बार कर दिया।

आश्चर्य! फरसा गरदन में आधी दूर तक धँस गया; अगर लहू की एक भी बूँद नीचे न गिरी। वह अजनबी उसी तरह अविचल खड़ा रहा। कुछ क्षण बाद उसने फरसा ऐसे निकाल लिया जैसे कुछ हुआ ही न हो और गरदन टटोल कर देखी। घाव देखते देखते भर गया था। वहाँ कोई निशानी भी बाकी न रही।

उसने नीलकण्ठ से हँस कर कहा- "भैया! तुम्हारी बारी हो गई। अब मेरी बारी है। हाँ, अगले साल इसी दिन बादे के अनुसार बन-दुर्ग को आना। मैं तुम्हारा इन्तजार करता रहूँगा।" इतना कह कर वह जैसे आया था वैसे ही चला गया। सब लोग मुँह बाए देखते खड़े रह गए।

एक साल यों ही बीत गया। देखते देखते विजया दशमी निकट आ गई। बेचारे नीलकण्ठ को पिछले साल की विजय दशमी के दिन पर की विचित्र घटना भूली नहीं थी। उसे वादे के मुताबिक वन-दुर्ग जाना ही था। नहीं तो सारे राज्य पर कलङ्क लग जाता। आखिर सब से विदा लेकर नीलकण्ठ दन-दुर्ग को रवाना हुआ। बेचारे के लौटने की आशा किसी के मन में न थी।

लेकिन नीलकण्ठ को कोई सोच न था। वह जङ्गलों-झाड़ियों में से होकर दिन-रात चलता गया।

यों बहुत दूर जाने के बाद वह एक जगह घोड़े से उतरा और एक पेड़ के नीचे जाकर लेट गया। इतने में उसे कहीं से एक औरत के

रोने की आवाज सुनाई दी। दौड़ा-दौड़ा उस तरफ गया तो देखा कि कुछ लुटेरे एक राजकुमारी के गहने छीन रहे हैं। नङ्गी तलवार हाथ में लिए नीलकण्ठ को देखते ही लुटेरे सिर पर पैर रख कर भाग गए।

नीलकण्ठ ने उस राजकुमारी को तसल्ली दी और पूछा कि बात क्या हुई ! राजकुमारी ने अपना सारा हाल सुना कर कहा-"आज आपने मेरी जान बचाई। में आप का एहसान कभी नहीं भूल सकती। लीजिए यह अंगूठी। इसे अपने पास रख लीजिए। इस के प्रभाव से किसी तरह के हथियार आपको चोट नहीं पहुँचा सकेंगे।" यह कह कर उसने अंगूठी देनी चाही। मगर नीलकण्ठ ने लेने से इनकार कर दिया। वह बोला-"वीर का तो धर्म है कि जिस तरह हँसते हँसते वह वार करे, उसी तरह हँसते हुए उसे झेल भी ले। जो हमेशा बार करना ही चाहता है और दुश्मन का बार झेलना नहीं चाहता यह वीर नहीं। मैं कायर नहीं हूँ। मैं हमेशा धर्म-युद्ध करता हूँ।"

इतना कह कर राजकुमारी से बिदा लेकर वह नजदीक की नदी में स्नान करने गया। थोड़ी देर बाद राजकुमारी भी चुपके से नदी किनारे गई और अंगूठी उसके कपड़ों में

छिपा कर वहाँ से लौट गई। नीलकण्ठ को बिल्कुल शक न हुआ।

दूसरे दिन जब नीलकण्ठ बन-दुर्ग पहुँचा तो वह योद्धा फरसा लिए खड़ा उसका इन्तजार कर रहा था। "तुम अपनी बात के पक्के हो। तुम्हें देख कर मुझे बहुत खुशी होती है।" वह बोला।

नीलकण्ठ उसका वार झेलने के लिए तैयार खड़ा हो गया। "भई ! मैं तैयार खड़ा हूँ। बार करो।" उसने कहा।

उसकी बात सुन कर वह योद्धा खिल-खिला कर हँस पड़ा और बोला -"मानों

बार खाने के बाद भी तुम जिन्दा रहोगे? कितने भोले हो !" इतना कह कर उसने अपना फरसा उठाया और पूरे जोर से नीलकण्ठ की गरदन पर चार किया।

आश्चर्य ! फरसा आधी दूर तक गरदन में धँस गया। मगर लहू की एक बूँद भी नीचे न गिरी। उस योद्धा के आश्चर्य का ठिकाना न रहा। साथ साथ नीलकण्ठ को भी कुछ कम आश्चर्य न हुआ। नीलकण्ठ ने यों ही फरसा निकाल लिया जैसे कुछ हुआ ही न हो।

वन-दुर्ग के योद्धा को अपनी आँखों पर आप ही विश्वास न हुआ। "दगा दगा !" कह कर वह फिर फरसा उठाने लगा। तब नीलकण्ठ ने भी तलवार निकाल ली।

इतने में वन-दुर्ग के राजा और राजकुमारी भी वहाँ पहुँच गए। उनको देख कर दोनों प्रतिद्वन्दी लज्जित खड़े रह गए। नीलकण्ठ ने देखा तो यह वही राजकुमारी थीं जिसे उसने लुटेरों से बचाया था। राजकुमारी ने भी उसे देखते ही पहचान लिया और बताया कि उसी ने वह जादू की अंगूठी उसके कपड़ों में छिपा दी थी, जिसके प्रभाव से वह उस योद्धा के फरसे का बार खाकर भी जिन्दा रह सका।

तब वन-दुर्ग के महाराज ने नीलकण्ठ की न्याय-शीलता और साहस को सराहा। कुछ दिन वहाँ रहने के बाद उसने अपनी लड़की से उसका ब्याह बड़ी धूम-धाम से कर दिया। उस योद्धा ने भी नव-दम्पति को आशीर्वाद दिया। आखिर महाराज ने भेद खोल दिया कि उन्हीं ने उस विजय दशमी के दिन उस योद्धा को इस विचित्र द्वन्द-युद्ध के लिए अलकापुर भेजा था। इस तरह उसे भेजने का मतलब ही था राजकुमारी के लिए एक सुयोग्य वर ढूँढना। यह सुन कर लोगों के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

किसी समय मारवाड़ में राजा गजसिंह का शासन चलता था। उनके बड़े लड़के का नाम अमरसिंह था। बाप-बेटे में बनती नहीं थी। इसलिए बाप ने बेटे को राज्याधिकार से वञ्चित कर दिया और देश निकाला दे दिया। जिस दिन युवराज अमरसिंह राज से निकल जाने लगा, उस दिन सब को दुख हुआ। था वह जिद्दी स्वभाव का; मगर हृदय उसका अच्छा था। कुछ सैनिकों ने जो उसे बहुत प्यार करते थे, उसके साथ ही देश छोड़ दिया।

अमरसिंह ने सीधे जाकर शाहजहाँ के दर्शन किए। बादशाह ने उसको देखते ही जान लिया कि यह बड़ा बहादुर है। इसलिए खूब आव-भगत की और दरबार में एक बड़ा ओहदा भी दिया।

उन दिनों बादशाह कुछ दिन दिल्ली में रहते थे तो कुछ दिन आगरे में। उन्हीं दिनों अमरसिंह का बीकनेर के राजा से झगड़ा भी हुआ। यह बात बादशाह को मालूम हुई तो उन्होंने सोचा-"दोनों मेरे मातहत हैं। सुलह कराने में कोई मुश्किल न होगी। मगर दरबार में अमरसिंह का प्रभाव बढ़ते देख उसके दुश्मन भी बहुत से हो गए थे। खुद बादशाह के साले सलाबतखान से उसकी नहीं बनती थी। फिर भी खुले-आम उसका विरोध करने का साहस किसी को न था। उसके दुश्मन ताक लगाए बैठे थे और मौके की राह देख रहे थे।

इस तरह दरबार में दो गुट बन गए थे, एक सलाबतखान का और दूसरा अमरसिंह का। अब कुछ चापलूस लोग धीरे-धीरे बादशाह के कान भरने लग गए थे। दिन दिन बादशाह उससे विमुख होता चला गया। इधर अमरसिंह ऐसा था कि अपनी ओर से कुछ नहीं कहता था।

कुमारी रूपा

एक बार बादशाह ने किसी बात पर गुस्से में आकर अमरसिंह पर नाहक जुर्माना लगा दिया और जुर्माना वसूल करने का काम अपने साले सलाबतखान को दिया।

अब तो घमण्डी सलाबतखान फूला न समाया। सोचा-"अब सारी कसर निकाल लूँगा।" एक दिन भरे दरबार में अमर सिंह को टोक कर पूछा- "बताओ ! जुर्माना कब चुकाओगे ?"

यह बात मानी अमरसिंह के कलेजे में बरछी की तरह चुभ गई। "लो, अभी चुका देता हूँ।" यह कह कर उसने झट तलवार म्यान से निकाल ली और एक ही बार में सलाबत का सिर धड़ से जुदा कर दिया। दरवार में सन्नाटा छा गया। बादशाह क्रोध से काँपने और अमरसिंह की निन्दा करने लगा। लेकिन अमरसिंह बिलकुल न डरा। उसने बादशाह को मुँह तोड़ जवाब दिया।

बस, बादशाह ने तैश में आकर अपने सिपाहियों को हुक्म दिया- "पकड़ लो इस गुस्ताख को।" शाही सिपाही अमरसिंह को पकड़ने आगे बढ़े। अमरसिंह चारों ओर से घिर गया। उसकी तलवार खुल कर खेलने और बारम्बार बिजली की तरह कौंधने लगी। पल भर में वहाँ लहू के परनाले वह चले। घायलों की चीख-पुकार से सारा दरबार गूँजने लगा। दरबारी जान बचा कर भागने लगे। खुद बादशाह वहाँ से उठ गया। अमरसिंह को कैद करने का यज्ञ सफल नहीं हुआ।

पल में यह खबर सारे किले में फैल गई। लोग डर से थर-थर काँपने लगे। एकाकी अमर शेर की तरह झूमता हुआ वहाँ से चला गया। किसी को उसे रोकने का साहस न हुआ।

दूसरे दिन बादशाह ने सोने की थाली मैं बहुत से हीरे-जवाहरात भर कर उन पर एक बीड़ा रखा और भरे दरबार में उसे दिखा कर बोला- "जो अमरसिंह का सिर काट लाएगा उसे यह ईनाम मिलेगा। है कोई जवाँमर्द जो यह बीड़ा उठाने की हिम्मत रखता है?" दरबारी सभी चुपचाप सुनते रहे। किसी को साहस न हुआ कि आगे बढ़ कर बीड़ा उठा ले। आखिर अमरसिंह के साले अर्जुन गौड़ ने आगे बढ़ कर धीरे से बीड़ा उठा लिया। बादशाह को विस्मय हुआ। लेकिन वह कुछ नहीं बोला।

दूसरे दिन अर्जुन गौड़ ने दोस्त की तरह अमरसिंह के घर जाकर उसे सलाह दी कि बादशाह से वैर मोल लेना ठीक नहीं। किसी न किसी तरह उनसे सुलह कर लेना ही अच्छा है। अमरसिंह ने गुस्से के साथ कहा कि-"मैं उनके कदमों पर नाक रगड़ने नहीं जाऊँगा।" लेकिन अर्जुन गौड़ के बहुत समझाने-बुझाने पर उसने किसी तरह बादशाह के दर्शन करने के लिए जाना मञ्जूर कर लिया।

अर्जुन गौड़ को अच्छी तरह मालूम था कि अमर सिंह बड़ा अभिमानी है; वह किसी भी हालत में सिर झुकाना पसन्द नहीं करता। इसलिए अमरसिंह को महल में ऐसे दरवाजे से ले जाने लगा जो बहुत छोटा था और इसीसे अन्दर जाने के लिए सिर झुका कर जाना पड़ता था। अर्जुन गौड़ ने जो सोचा था, वही हुआ। अमर ने सिर झुका कर अन्दर जाने से इनकार कर दिया। तब गौड़ ने उसे बगल का एक झरोखा दिखाया और कहा-"इसमें से पैर पहले रख कर अन्दर उतर जाओ। इसमें तुम्हारी कोई हेठी नहीं होगी।" भोले अमर ने साले की बात सच मान ली। उसने

वैसे ही किया। उसने झरोखे में से अन्दर उतरने की कोशिश की। इधर गौड़ ने पीछे से उसकी पीठ में छुरा भोंक दिया। अमरसिंह ने झट सारी बात ताड़ ली और तलवार चलाई। लेकिन गौड़ की सिर्फ नाक ही कट कर रह गई। उसने आसानी से अमरसिंह का सिर काट लिया और उसे एक थाल में रख कर बड़े गर्व के साथ बादशाह के सामने ले गया।

बादशाह ने जब सुना कि अमरसिंह की मौत किस तदबीर से हुई तो गौड़ के प्रति उसकी नफरत का ठिकाना रहा। उसने हुक्म दिया- "इस पापी के मुँह पर कालिख पोत दो; गधे पर बिठा कर इसका जुलूस निकालो और शहर के बाहर ले जाकर इसका सिर काट लो।"

उधर अमरसिंह के मरने की खबर उसकी स्त्री हरिराणी ने सुनी। तुरन्त उसने सती हो जाने की सोची। लेकिन पति की लाश बादशाह के किले में पड़ी हुई थी। वह सती हो तो कैसे हो ? उसे सोच में देख अमरसिंह के भांजे रामसिंह ने, जो अभी बच्चा ही था, कहा- "में जाता हूँ सिपाहियों के साथ और लाश ले जाता हूँ।"

लेकिन हरिराणी ने सोचा-"बादशाह की बेशुमार फौज के मुकाबले में यह बच्चा अकेले क्या कर सकता है?"

आखिर जब कोई चारा नहीं सूझा तो उसने अपने देवर को चिठ्ठी लिखने की सोची। पति जब जीवित थे तो इन दोनों में नहीं बनती थी। लेकिन ऐसी विषम घड़ी में कौन इन छोटी छोटी बातों की परवाह करता है? आखिर उसने चिठ्ठी लिखी- "देवर! तुम्हारे भाई मुगलों के हाथ मारे गए और मुझको अनाथ और अकेली छोड़ गए। सती होना ही मेरी एक मात्र आशा

है। लेकिन उनकी लाश बादशाह के किले में पड़ी हुई है। मैं सती होऊँ तो कैसे ? तुम वीर हो ! जाओ, लाश को ले आओ और मेरे सिन्दूर की लाज रख लो।

चिट्ठी जब मिली तो भल्लू सिंह पशोपेश में पड़ गया। तब उसकी पत्नी बोली-"आप चूड़ी पहन कर घर बैठिए ! मैं जाकर वह लाश ला देती हूँ !" ये वचन सुन कर भल्लूसिंह तिलमिला गया। वह तुरन्त पाँच सौ सिपाहियों के साथ रवाना हुआ। बालक रामसिंह भी साथ हो गया था। मल्लूसिंह ने अपने सिपाहियों से कहा-"मारवाड़ के राजवंश की मर्यादा आज तुम्हारे हाथों में है। बीरो ! राजपूत कुल को कलङ्क न लगाना।"

तुरन्त उन वीर सिपाहियों ने जोश में आकर प्रण किया कि "या तो वे अमरसिंह की लाश ले आएँगे या बादशाह के किले में ही मर मिटेंगे।"

इस तरह उस नगण्य सेना के साथ मल्लूसिंह और रामसिंह ने मुगल बादशाह के किले पर धावा बोल दिया और घुस कर उस जगह चले गए, जहाँ वह लाश पड़ी हुई थी। रामसिंह और भल्लूसिंह लाश को लेकर भाग चले। लेकिन तब तक बादशाह के सिपाही सतर्क होकर एकत्र हो गए थे। वे इनको घेरने की चेष्टा करने लगे। लेकिन राजपूत सैनिकों ने उन्हें उलझा रखा और इस तरह मल्लूसिंह और रामसिंह को भाग जाने का मौका दिया।

पीछे जितने राजपूत सैनिक रह गए थे, सब एक एक कर कट मरे; मगर मुगलों को पाँव आगे बढ़ाने न दिया। भल्लू सिंह और रामसिंह चन्द सिपाहियों के साथ लाश को लेकर सुरक्षित वापस लौट आए। हरिराणी निर्विघ्न सती हो गई। आज भी अमरसिंह की वीर गाथा स्मरण करके लोगों का मन पुलकित हो जाता है।

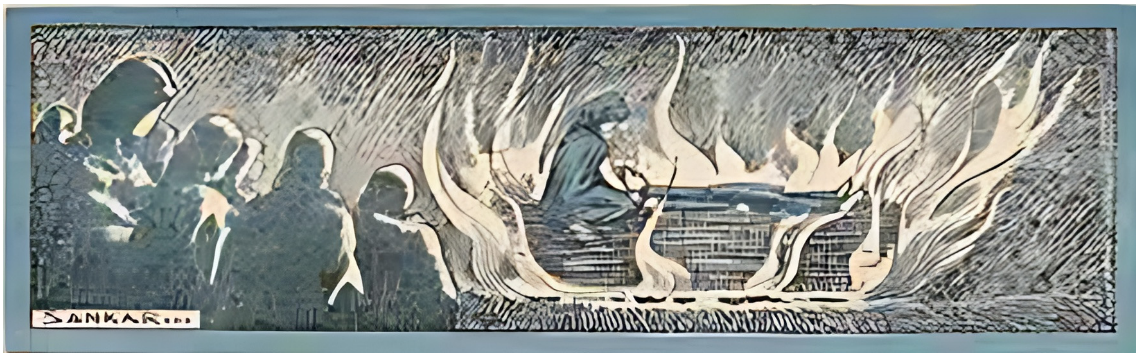

रङ्गीन चित्र - कथा, चित्र – ६